भारतीय राजनीति एवं जाति
(एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण)

डॉ. रश्मि दुबे
प्राध्यापक - समाजशास्त्र
शासकीय स्वशासी कन्या स्नातकोत्तर, उत्कृष्टता महाविद्यालय, सागर (म.प्र.)

सारांश -

भारत की जाति व्यवस्था सदैव प्रभावशाली रही है। किसी की जाति, राजनीतिक शक्ति, भूमि और पुलिस या न्यायिक सहायता तक पहुंच को नियंत्रित कर सकती है । जातियां भी कुछ क्षेत्रों के लिये स्थानीय होने के कारण स्थानीय राजनीति को प्रभावित करती है । हर जगह राजनीतिक दल विशिष्ट जातियों के हितों का प्रतिनिधित्व करते है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत में लोकतांत्रिक प्रकिया प्रारंभ होने से भारतीय समाज में स्थापित जाति प्रथा ने मतदान में महत्वपूर्ण भूमिका निभाना प्रारंभ कर दिया और जाति की राजनीति में भूमिका से जाति एक महत्वपूर्ण व प्रभावकारी तत्व बनती चली गई। इस प्रकार व्यस्क मताधिकार लागू करने के पश्चात जाति एक राजनीतिक शक्ति के रूप में उभर कर सामने आई। जाति एवं राजनीति समान रूप से एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। दोनों का एक दूसरे को प्रभावित करने में महत्वपूर्ण स्थान है । राजनीति को जाति का सहारा लेना पड़ता है और राजनीति जाति को भी प्रभावित करती है, क्योंकि राजनीति के माध्यम से ही जाति अपने हितों की रक्षा करती है अतः राजनीति में जातिवाद तथा जाति के राजनीति करण के रूप में दोनों परस्पर संबंधित हैं।

मुख्य शब्द - जाति, राजनीति, सामाजिक संस्तरण।

जाति एक प्रमुख सामाजिक संस्था है । हिन्दुओं के सामाजिक संस्तरण का प्रमुख आधार जाति ही माना जाता है। जाति व्यवस्था के इतिहास पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट होता है कि जाति की उत्पत्ति के वास्तविक आधार को समझना स्पष्ट नहीं हैं। वेद, उपनिषद, गीता, महाभारत, आदि अनेक धर्मग्रन्थों ने जाति की उत्पत्ति का आधार किसी न किसी रूप में वर्ण व्यवस्था को माना है, लेकिन वर्तमान जाति व्यवस्था में वर्ण व्यवस्था का महत्व लगभग समाप्त हो गया है। समय के साथ जाति की गतिशील प्रकृति के कारण जाति व्यवस्था में अनेक परिवर्तन हुये और इन्हीं परिवर्तनों के कारण जाति व्यवस्था अपने मूल स्वरूप को नहीं बचा पायी।

भारत में विवाह और परिवार की भांति यूरोपीय संकट से उत्पन्न परिस्थितियों के प्रभाव में जाति के कार्यों में परिवर्तन हुआ है। सामाजिक परिवर्तनों के परिणामस्वरूप यूरोप में विवाह और परिवार की प्रकिया में

परिवर्तन हुए तो भारत में जाति पर प्रभाव पड़ा। भारत की आर्थिक अवस्था बदली, उदारवादी प्रजातन्त्र के आदर्श का प्रसार हुआ, वैज्ञानिक प्रौद्योगिकी को उत्तरोत्तर अपनाया गया, नगरीकरण व औद्योगिकीकरण बढ़ा, प्रशासन के आधार बदले, भारतीय विधि तथा प्रशासन प्रणाली को यूरोपीय मान्यताओं के साथ समन्वित करना पड़ा जिसके परिणाम इस प्रकार दिखायी दिये -

1. जाति के परम्परागत, सामाजिक, आर्थिक आधार नरम हो गये ।
2. जाति भारतीय समाज की सामाजिक समस्या बन गई।
3. जाति संस्था का सामाजिक, ऐतिहासिक तथा कार्यात्मक एवं दार्शनिक पुनर्परीक्षण प्रारम्भ हुआ।
4. समाज सुधार आन्दोलन का विकास हुआ। जाति को अप्रजातान्त्रिक और अमानवीय कहकर वर्ण सिद्धान्त पर मनुष्य को कसा गया। साथ ही जाति संगठन को ही समाज सुधार आन्दोलन का माध्यम बनाने पर बल दिया गया।
5. शूद्रवर्णीय जातियों में जात-विरोधी, विशेषकर ब्राह्मण विरोधी आंदोलन की उत्पत्ति हुई तथा शूद्रवर्णीय जातियों को अखिल भारतीय स्तर पर संगठित होने की प्रेरणा मिली जिसके अन्तर्गत शूद्रवर्णीय जातियों की सामाजिक समस्या राजनीतिक समस्या बन गई।
6. राजनीतिक अधिकार को प्राप्त करने के लिये विभिन्न जातियों में प्रतियोगिता प्रारम्भ हुई जिससे अन्तर्जातीय तनाव व संघर्ष को प्रोत्साहन मिला। इनका परिणाम यह निकला कि जाति में एक ओर विघटक व दूसरी ओर संघटक शक्तियों का प्रादुर्भाव हुआ।

जाति एक बहुमुखी जटिल सामाजिक प्रमेय है। इसके सदस्य परम्परा से एक या एक से अधिक पेशों से जुड़े रहते हैं। इनमें जातीय पंचायत होती है, खान-पान के नियम तथा कल्प होते हैं। प्रत्येक जाति का परम्परागत पद होता है और गतिशील सामाजिक संरचना पर यह परम्परा निर्भर होती है। प्रत्येक जाति परम्परानुसार एक न एक पेशे से संबंधित है जैसे - कुम्हार, तेली, दर्जी आदि। प्रत्येक जाति में जाति-उच्च परम्परा निहित रहती है।

जाति का राजनीतिक पक्ष

➢ जाति एक अर्द्धराजनीतिक इकाई है - अर्द्ध इसलिये कि राजनीतिक संगठन होते हुए भी जाति संगठन राजनीतिक दृष्टिकोण से स्वतन्त्र नहीं रहा है। भारत की राजनीतिक व्यवस्था तीन स्तरों पर संगठित रही हैं। एक जाति के स्तर पर, दूसरी क्षेत्रीय स्तर पर और तीसरी अखिल भारतीय राजनीतिक स्तर पर। अंग्रेजी राज्य की स्थापना के पहले रियासती स्तर ही प्रधान था। एक सामाजिक राजनीतिक इकाई के रूप में जाति धरातल पर कार्य करती है। जाति पंचायत का संगठन जाति का राजनीति पहलू है। जाति पंचायत जाति व्यवस्था में परम्परा के रूप में रही है। प्रत्येक अन्तर्विवाही समूह एक या कई जाति पंचायतों में संगठित रहा है। पंचायतों में परम्परा विधि को लागू किया गया है। जाति पंचायतों का मुखिया वंशानुक्रमण के आधार पर चुना

जाता है। जाति पंचायत के अन्तर्गत जातीय संबंधी सभी प्रकार के नियमों का प्रतिपादन, संरक्षण तथा निर्वाचन होता रहा है।

➢ **संस्थागत राजनैतिक दशा** - जाति संरचना के माध्यम से भारत की राजनीतिक दशा संस्थागत रही है। जाति राजनीतिक सत्ता के उच्च स्तर पर रही है। वे हैं, ब्राह्मण तथा क्षत्रिय वर्ग की जातियां। मध्य स्तर पर वैश्यवर्णीय जातियां तथा निम्न स्तर पर शूद्रवर्णीय जातियां।

➢ **उच्च वर्णी सत्ता** - राजनीतिक सत्ता और विशेषाधिकार उन्हीं जातियों के हाथों में रहे है। जिनके पास अधिकृत भूमि रही है। इस परम्परागत सामाजिक आर्थिक अवस्था में प्रत्येक गांव में एक प्रभुसत्ता सम्पन्न जाति रही है। प्रभुसत्ता सम्पन्न वह जाति है जिसके पास अपने गांव या क्षेत्र के सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक विशेषाधिकार रहे हैं और इस कारण अन्य जातियों के सामाजिक जीवन का वह आदर्श रही है। प्रभुता सम्पन्न जाति किसी भी वर्ग की हो सकती है यद्यपि ब्राह्मण, क्षत्रिय व वैश्यवर्णीय जातियां ही प्रभुत्व सम्पन्न जाति के रूप में पाई गई। जाति व्यवस्था के माध्यम से राज्य सत्ता के संस्थागत हो जाने के कारण भारतीय सामाजिक, सांस्कृतिक नेतृत्व ब्राह्मण और क्षत्रिय के हाथ में रहा है। इस परम्परागत, सामाजिक प्रमेय से यह ऐतिहासिक तथ्य भी स्पष्ट होता है कि भारतीय इतिहास के प्रत्येक काल में ब्राह्मण व क्षत्रियों ने जाति प्रथा का विरोध किया है और उसे स्थायित्व भी प्रदान किया है।

प्रत्येक जाति समूह अपनी उन पड़ोसी जातियों या उपजातियों को शामिल करके बड़ा बनने की कोशिश करता है जिन्हे पहले इनसे बाहर रखा गया था। विभिन्न जाति समूहों को अन्य जातियों या समुदायों के साथ गठबंधन की आवश्यकता होती है और इस प्रकार राजनीतिक क्षेत्र में नये प्रकार के राजनीतिक समूह बनकर सामने आ जाते हैं।

जाति का आधुनिक राजनीति में प्रवेश - जाति व्यवस्था ने भारत को एक सुदृढ़ आधार प्रदान किया है। जाति के माध्यम से व्यक्ति को प्रतिष्ठा मिलती है, उसकी सामाजिक परिधि निश्चित होती है। सामाजिक आर्थिक सुरक्षा मिलती है। ब्रिटिश शासन में ब्रह्म समाज और आर्य समाज जैसे सुधारवादी आन्दोलनों के परिणामस्वरूप जातियों में गतिशीलता आई। बहुत-सी शूद्र जातियां आर्य समाज व ब्रह्मसमाज के प्रभाव में आकर उच्च वर्णीय जातियां हो गई। इधर औद्योगिकीकरण के कारण व्यवसाय के नये आयाम सामने आये और परम्परागत व्यवसायों के प्रति मोह भंग हुआ। ईसाइयत के प्रभाव के कारण समाजवादी विचारधारा फैली और इससे शूद्रवर्णीय जाति को बल मिला। शूद्रवर्णीय तथा अस्पृश्य जाति को विशेष राजनीतिक अधिकार प्राप्त हुए। चुनाव में उनके लिये स्थान सुरक्षित होने लगे और इससे राजनीतिक चेतना विकसित हुई। शिक्षा के विकास के कारण अस्पृश्य जातियों के सदस्य परम्परागत व्यवसाय को अपनाना नहीं चाहते थे इसलिए व्यवसाय, शिक्षा, सेना, तथा प्रशासन में इन जातियों के लिये आरक्षण किये गये। इससे एक ओर जातिवाद को प्रोत्साहन मिला, तो दूसरी ओर जाति का भारतीय राजनीति में प्रवेश हुआ। इस दृष्टि से निम्न पक्ष हमारे सामने आते हैं-

1. राजनीतिक चेतना के कारण अस्पृश्य जातियों ने शिक्षा प्राप्त करने के परम्परात व्यवसाय को बहुत कम अपनाया।
2. औद्योगिकीकरण ने बहुत से परम्परागत व्यवसाय के स्वरूप को बदला।
3. भारतीय गांव में जाति व पेशे का परम्परागत सह-सम्बन्ध नहीं बदला।
4. यजमान और प्रजा के परम्परागत सम्बन्ध धूमिल हो गये।
5. कर्मकाण्डी कम विन्यास पर भी राजनीतिक एकता का प्रभाव पड़ा है।
6. यातायात के साधनों का भी राजनीतिक चेतना पर प्रभाव पड़ा।
7. राजनीतिक अधिकारों के मिलने से उच्चवर्णीय तथा निम्न वर्णीय जातियों में संघर्ष उत्पन्न हुआ है।
8. जाति पंचायतों का स्थान जाति संगठनों ने ले लिया जिसमें सुधारवाद का मुख्य ध्येय रहा है।
9. राजनीतिक विशेषाधिकार मिल जाने से कर्मकाण्डी समानता की मांग पनपी। इससे संविधान में निम्न जातियों को संरक्षण प्रदान किया गया।
10. गांव में राजनीतिक विशेषाधिकारों के बावजूद भी ग्राम पंचायतों को अपने नियन्त्रण में रखा जिससे गुटबन्दी व संघर्ष उत्पन्न हुए।

इन सबके परिणामस्वरूप एक ओर तो जाति की आलोचना आरम्भ हुई दूसरी ओर जाति संगठनों को प्रोत्साहन मिला। एक ओर जाति विरोधी विचार फैला तो दूसरी ओर गीता के चातुर्वर्ण के आधार पर जाति का संयुक्तिकरण किया गया। इससे दूसरी ओर जनगणना में निम्न जातियों ने अपने को उच्चस्तरीय जाति अंकित करना अनिवार्य कर दिया और श्रीनिवास के अनुसार ज्यों-ज्यों जाति की राजनीतिक सत्ता व कार्य बढ़ते गये, उसी प्रकार जनता के हाथ में राजनीतिक सत्ता भी आती गई। इसका परिणाम राजनीतिक दलों पर भी पड़ा।

भारतीय संविधान में अस्पृश्यता को पूर्णतया समाप्त कर दिया गया जिसमें सभी जातियों को समानता का दर्जा हासिल हुआ। आरक्षण के फलस्वरूप मंत्रिमण्डल सरकारी सेवायें विधानमण्डल और सार्वजनिक जीवन के सभी क्षेत्र के लोगों ने प्रवेश किया है इन नवीन परिस्थितियों ने जाति व्यवस्था को बदल कर रख दिया हैं। भारतीय संविधान द्वारा राजनीतिक समानता के सिद्धांत को कियान्वित किया गया है जिसके अंतर्गत प्रत्येक नागरिक को मत देने का अधिकार मिला तथा यह सुनिशचित किया गया कि वह किसी भी राजनीतिक गतिविधि में भाग ले सकता है। जाति के आधार पर कोई भेदभाव नहीं किया गया। अनुसूचित जाति व जनजाति के लिये मंत्रिमण्डल में स्थान आरक्षित रखे गये इस कारण इनकी राजनीतिक सहभागिता में वृद्धि हुई।

जाति और राजनीति के पारस्परिक सम्बन्ध - भारत में जाति राजनीतिक कियाशीलता का अभिन्न अंग है। यह दबाव समूह के रूप में कार्य करता है। इनके सदस्य इसे छोड़कर किसी दूसरे समूह का हिस्सा नहीं बन सकते निम्न आधार पर हम जाति और राजनीति के संबंधों को समझ सकते है -

➢ **प्राचीनता से मोह** - भारतीय जाति संस्था इतनी महत्त्व की है कि अनेक सामाजिक राजनीतिक परिवर्तनों के होते हुए भी यह परम्परा में विश्वास करती है। महात्मा गांधी ने वर्ण धर्म की अवधारणा की पुष्टि की। यह देखा गया है कि राजनीतिक उद्देश्य के लिये जुड़े जाति समूह वैयक्तिक रूप से पूर्णतः भिन्न हो जाते हैं। पदो के लिये वे अपना दावा तक छोड़ देते हैं।

➢ **कोटा प्रणाली** - ब्रिटिश शासन में चुनावों में कोटा प्रणाली ने विभिन्न जातियों को जातिगत संगठन में आबद्ध होने तथा उपजातियों को वृहद् जातियों में समाप्त होने के लिये विवश किया है।

➢ **जाति संगठन** - जब भारत में ब्रिटिश सरकार ने नगरपालिका तथा जिला वोर्डो के चुनाव कराये, तब से ही जाति सभाओं तथा संगठनों के प्रजातांत्रिक रूप से गठन होने लगा।

➢ **जातिगत चेतना** - ब्रिटिश शासन में हुई राजनीतिक उथल-पुथल तथा स्वतन्त्रता आंदोलन से जातियों में राजनीतिक चेतना का सूत्रपात हुआ।

दक्षिण में जाति चेतना, क्षेत्र चेतना के रूप में उभरने लगी। दक्षिण समाज (महादेव गोविन्द रानाडे) सत्य शोधक समाज (जोतिवा फुल्ले) आदि ने जाति सुधार का संकल्प लिया। क्षत्रैक्य सभा का संगठन क्षत्रियों की एकता के लिये किया गया। इसी प्रकार कायस्थ सभा, सभी वर्गो के कायस्थों को एक जगह एकत्रित करने के लिये बनी। यों समाज सुधार तथा राजनीतिक परिवर्तन के प्रभावस्वरूप बहुत अथवा जातिहीन समाज की प्रकिया चलने लगी। प्रो. एम. एम. श्रीनिवास ने भी जातियों में राजनीतिक विकास को पाया है। इसी प्रकार एफ. जी. बैले ने 'पालिटिक्स एण्ड सोसल चेंज' में राजनीतिक परिवर्तन का अनुभव किया है। जाति, सामाजिक संरचना का महत्वपूर्ण आधार है। भारतीय राजनीति का आधार मत (Vote) है, और वोट की राजनीति ने जाति के राजनीतिक पक्ष को उजागर किया है।

समाज-वैज्ञानिकों ने प्रारम्भ से ही राजनीति में सामाजिक संरचना एवं परम्परागत सामाजिक संस्थाओं के अध्ययन में रूचि ली है। जाति व्यवस्था भारतीय समाज का एक महत्वपूर्ण पहलू है। स्वतन्त्रता संग्राम में सभी जातियों एवं सम्प्रदायों के लोगों ने जब समान रूप से योगदान दिया, तब ऐसा लगता था कि स्वतन्त्रता के पश्चात् जाति व्यवस्था तथा इसकी सबसे बड़ी कुरीति 'जातिवाद' का प्रभाव कम हो जाएगा। परन्तु ऐसा नहीं हुआ तथा स्वतन्त्रता के पश्चात् जातिवाद ने फिर से जोर पकड़ा और जातिवाद राजनीतिक शक्ति के रूप में उभरने लगा। भारत में जाति एवं राजनीति के परस्पर सम्बन्धों का अध्ययन करने वाले विद्वानो में एम. एन. श्रीनिवास, ए. सी. मेयर, रजनी कोठारी, आन्द्रे बेतेई, एडमण्ड लीच, कैथलीन गफ, एफ. जी. बेली, एल. आई. रूडोल्फ, एच. ए. गोल्ड, टी. के. ओमन, योगेश अटल, एम. एस. ए. राव, हेरोल्ड आइजेक आदि प्रमुख हैं।

जाति राजनीति के परस्पर सम्बन्धों के बारे में विभिन्न विद्वानों के विचारों में मतभेद है। इस सन्दर्भ में चार प्रमुख सैद्धान्तिक विचारधाराएं हमारे सामने प्रस्तुत की गई हैं। ये विचारधाराएं निम्नांकित हैं-

प्रथम विचारधारा के अनुसार राजनीतिक सम्बन्ध केवल सामाजिक सम्बन्धों की अभिव्यक्ति मात्र हैं

अर्थात् सामाजिक सम्बन्ध राजनीतिक सम्बन्धों का निर्धारण करते हैं तथा सामाजिक संगठन राजनीतिक व्यवस्था का स्वरूप निर्धारण करते हैं। द्वितीय विचारधारा के समर्थक जाति एवं राजनीति, दोनों को स्वतन्त्र मानते हैं तथा जाति को राजनीति के दोषों से बचाना अपना परम कर्तव्य समझते हैं। तृतीय विचारधारा के समर्थक जाति को राजनीति की अपेक्षा महत्वपूर्ण मानते हैं क्योंकि राजनीति वास्तव में जाति के इर्द-गिर्द घूमती है। अगर कोई व्यक्ति राजनीति में ऊंचा उठना चाहता है तो उसे अपनी जाति को अपने साथ लेकर चलना होगा। चतुर्थ विचारधारा के समर्थक जाति एवं राजनीति को परस्पर सम्बन्धित मानते हैं तथा यह स्वीकार करते हैं कि दोनों ही एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। राजनीति को अपने लक्ष्यों की पूर्ति के लिए शक्ति की आवश्यकता पड़ती है। और शक्ति प्राप्त करने के लिए कई प्रकार के जोड़-तोड़ बैठाने पड़ते हैं। जोड़-तोड़ बैठाने के लिए संगठनों का सहारा लेना अनिवार्य है।

भारतीय समाज में जाति एवं राजनीति परस्पर सम्बन्धित हैं। भारतीय राजनीति में जाति की एक महत्वपूर्ण भूमिका रही है जिसे निम्नांकित रूप से समझा जा सकता है-

(1) जातियों ने संगठित होकर भारत में राजनीतिक और प्रशासनिक निर्णयन-प्रकिया को प्रभावित किया है। अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों का संवैधानिक आरक्षण इसका उदाहरण है।

(2) राजनीतिक दल चुनाव में जातिगत आधार पर अपने प्रत्याशियों का चयन करते हैं। किसी निर्वाचन क्षेत्र की जातीय संरचना कें आधार पर ही प्रत्याशियों को टिकट दिये जाते हैं।

(3) चुनाव अभियान तथा मतदान आचरण को प्रभावित करने के लिए भी जातिवाद का सहारा लिया जाता है।

(4) मन्त्रिमण्डलों के निर्माण में भी जातीय आधार को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से अपनाया जाता है ताकि सभी प्रमुख जातियों को इसमें प्रतिनिधत्व प्राप्त हो सके।

(5) भारत में अनेक जातिय प्रभावक समूहों ने राजनीति को प्रभावित किया है।

(6) जाति व्यवस्था प्रशासन के प्रचलन को भी प्रभावित करती है। व्यवसायिक पाठ्य-चर्चाओं (यथा मेडिकल एवं इन्जीनियरिंग पाठ्य-क्रम) में आरक्षण की नीति तथा केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों के पदों पर नियुक्ति एवं पदोन्नति में अनुसूचित जातियों का आरक्षण इसके उदाहरण हैं।

जाति के राजनीतिकरण के परिणाम इस प्रकार हैं-

(1) **अनुसूचित जातियों का विकास** - भारत में अनुसूचित जातियों को राजनीतिक संरक्षण मिलने से उनमें राजनीतिक चेतना विकसित हो रही है।

(2) **गुट निर्माण** - जब राजनीतिक दलों में जातियों का प्रवेश हो जाता है, तो वहां गुटबन्दी हो जाती है। जाति में विघटन होने लगता है।

(3) **पारस्परिक प्रभाव** - एक ओर जाति, राजनीति को प्रभावित कर रही है, तो दूसरी ओर राजनीति भी जाति को प्रभावित कर रही है। सभी राजनीतिज्ञ बहुसंख्य जातियों का समर्थन प्राप्त करने में लगे

रहते हैं, इससे जाति हित गौण हो जाते हैं।

जाति एवं राजनीति के परस्पर सम्बन्धों के बारे में उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय समाज में दोनों परस्पर सम्बन्धित हैं तथा दोनों ही अपने-आपको संगठित करने के लिए एक-दूसरे का सहारा लेते हैं। कुछ विद्वानों का यह विचार है कि प्रजातन्त्रीय व्यवस्था जाति व्यवस्था को समाप्त कर देगी, यह प्रश्न केवल सैद्धान्तिक स्तर पर ही उचित लगता है क्योंकि वास्तविकता इसके विपरीत है। कुछ विद्वानों नें जाति व राजनीतिक संबंधों को राजनीति का कैंसर कहा हैं तथा इसे राष्ट्र-निर्माण, राष्ट्रीय एकीकरण तथा आधुनिकीकरण में बाधक मानते हैं, जबकि कुछ अन्य विद्वानों ने इसे राजनीतिक विकास, आधुनिकीकरण तथा प्रजातन्त्रीय व्यवस्था को मजबूत बनाने में सहायक बताया है। पुरूषोत्तम अग्रवाल के अनुसार - आज जाति व्यवस्था भारतीय समाज की मूलभूत राजनीतिक समस्या है आज भारतीय राजनीतिज्ञों के सामनें जातिवाद प्रमुख समस्या है। लोकतांत्रिक समाज में राजनीतिक प्रकिया जातिय संरचनाओं को इस प्रकार प्रयोग में लाती है ताकि उनका सहयोग व समर्थन के द्वारा अपनी राजनीतिज्ञ स्थिति को और भी मजबूत बना सके आज हमारे समाज में राजनीति में जातिवाद की समस्या देश के विकास में बाधक है। बुद्धिजीवियों और राजनीतिक नेताओं को ईमानदार पूर्वक इस समस्या को मिटानें का कार्य करना चाहिये सभी देश का चहुमुखी विकास संभव होगा

सन्दर्भ -

1. वोहरा, वंदना; सामाजिक स्तरीकरण तथा परिवर्तन, जे.एम.डी. हाउस, ओमेगा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2015
2. गुप्ता, शिवानी; भारत में जाति व्यवस्था, द्वितीय तल, जे.एम.डी. हाउस 4 बी, वंदना पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2011
3. चौबे, कमल नयन; जातियों का राजनीतिकरण, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008
4. आहुजा, राम; भारतीय सामाजिक व्यवस्था, रावत प्रकाशन, जयपुर, 1995
5. श्रीनिवास, एम. एन.; कास्ट इन मॉडर्न इण्डिया एण्ड अदर एसेज, एशिया प्रकाशन, बम्बई, 1962
6. हट्न, जे. एच.; कास्ट इन इण्डिया, : इट्स नेचर, फंक्शन एण्ड ओरिजिन, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, बम्बई, 1961
7. राजकिशोर (संपा.); जाति प्रथा का विकास, आज के प्रश्न, जाति का जहर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004
8. दत्त, एन.के.; ओरिजिन एण्ड ग्रोथ ऑफ कास्ट इन इण्डिया, हिन्दुस्तान प्रकाशन, नई दिल्ली, 1931
9. घुर्ये, जी.एस.; कास्ट, क्लास एण्ड ऑक्यूपेशन, पॉपूलर प्रकाशन, बम्बई, 1961
10. ब्लंट, ई. ए. एच.; द कास्ट सिस्टम ऑफ नार्दर्न इण्डिया, एस. चॉद एण्ड कम्पनी, दिल्ली, 1969